Shikshan Sanshodhan : Journal of Arts, Humanities and Social Sciences ISSN(o): 2581-6241
Monthly, Peer-Reviewed, Refereed, Indexed Journal Impact Factor: 9.134
Volume - 8, Issue - 10, October - 2025

DOIs:10.2018/SS/202510013 --:-- Research Paper / Article / Review

दास्य-भाव की भक्ति: सूरदास साहित्य में सेवक-भावनाओं का विश्लेषण

दिनेश किराड़

सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, महाराजा अग्रसेन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नगर, जिलाडीग, राजस्थान, भारत

सारांश: भक्ति-साहित्य में भक्त और देवता के बीच के रिश्ते कई अलग-अलग रूपों में सामने आते हैं: शान्त, सखा, वात्सल्य, माधुर्य, दास्यआदि। 'दास्य-भाव' का मतलब है भक्त का खुद को सेवा-भूत सेवक के रूप में प्रस्तुत करना, जो देवता के प्रति समर्पण, जिम्मेदारी और नि:स्वार्थता का एक अनूठा मिश्रण है (जैसे, खुद को "भगवान का दास" कहने की प्रवृत्ति)। हिंदी-भक्ति-काल के कवियों में सूरदास का स्थान बेहद खास है। उन्होंने ब्रज भाषा में कृष्ण भक्ति के भाव को आम लोगों तक पहुँचाया। हालांकि, सूरदास केसाहित्य में दास्य-भाव का गहराई से विश्लेषण अपेक्षाकृत कम हुआ है। इस शोध का उद्देश्य है — सूरदास के साहित्य में दास्य-भाव की संरचना, स्वरूप औ रसांस्कृतिक अर्थ को उजागर करना।

मूलशब्द : दास्य-भाव, भक्ति-साहित्य, सूरदास, सेवक-भाव, हिंदी भक्ति काव्य ।

1. प्रविष्टि

भक्ति-साहित्य में भक्त और देवता के बीच के रिश्ते की विविधता कई रूपों में सामने आती है: शान्त, सखा, वात्सल्य, माधुर्य, दास्य आदि। 'दास्य-भाव'का मतलब है भक्त का खुद को सेवा-भूत सेवक के रूप में प्रस्तुत करना, जो देवता के प्रतिसमर्पण, जिम्मेदारी और नि:स्वार्थता का एक अनूठा मिश्रण है (जैसे, खुदको "भगवानकादास"कहने की प्रवृत्ति)।

हिंदी-भक्ति-काल के कवियों में सूरदास का स्थान बेहदखास है।उन्होंने ब्रज भाषामें कृष्ण भक्ति के भाव को आम लोगों तक पहुँचाया। हालांकि, सूरदास के साहित्य में दास्य-भाव का गहराई से विश्लेषण अपेक्षाकृत कम किया गया है।इस शोध का उद्देश्य है — सूरदास के साहित्य में दास्य-भाव की संरचना, स्वरूप और सांस्कृतिक अर्थ को उजागर करना।

2. साहित्य समीक्षा

यह हिस्सा उन महत्वपूर्ण शोधों का संक्षिप्त परिचय देता है, जिनमें दास्य-भाव या सूरदास-साहित्य कावि श्लेषण किया गया है:

- मीना, तुलसी राम (2025). "सूर-काव्य में लोक-जीवन के विविध आयाम।" रिसर्च हब इंटरनेशनल मल्टि डिसिप्लिनरी रिसर्च जर्नल, मीना ने सूरदास कीकविताओं मेंलोक-संस्कृति, आचारऔरनैतिकता के संदर्भ में दास्य-भाव की व्याख्या की है। उनका निष्कर्ष यह है कि सूरदास का 'सेवक-भाव' लोक जीवन के अनुशासन, सेवा-संस्कृति और सामुदायिक संबंधों को मजबूत करता है।
- स्वामी, डॉ. अदिति और धारीवाल, डॉ. मंजू (2021) ने अपने लेख "जयदेव और दादू के भक्ति-काव्य में भक्ति-भाव का रूपांतरण" में भक्ति की बदलती संरचनाओं प रध्यान केंद्रित किया है। वे बताते हैं कि जयदेव के काव्य में भावमाधुर्य की झलक मिलती है, जबकि उत्तरकालीन कवियों के काम में दास्य-भाव अधिक सामाजिक औरअनुशासनात्मक रूप ले लेता है।

- बरुआ, अंकुर (2020) ने अपने लेख "दास्य-भाव की युद्धात्मक काव्य-संरचना: देवता और भक्त के बीच उद्धार-संघर्ष" में दास्य-भाव को केवल समर्पण का प्रतीक नहीं, बल्कि "संघर्ष" का प्रतीक भी माना है। उनका तर्क है कि भक्त और देवता के बीच का संबंध हमेशा एक तरफा नहीं होता; भक्त अपनी विनम्रता के साथ-साथ देवता से नैतिक अपेक्षाएँ भी रखते हैं। यह दृष्टिकोण दास्य-भाव की पारंपरिक "सेवक-भावना" को एक सक्रिय और संवादात्मक प्रक्रिया के रूप में देखने का एक नया तरीका प्रस्तुत करता है।
- इसकेअलावा, शर्मा, जी. पी. (2019) ने "सूरदास औ रदास्य-भाव की सांस्कृतिक व्याख्या" परअपने विचार साझा किए। उन्होंने सूरदास के काव्य में दास्य-भाव को एक सांस्कृतिक प्रवृत्ति के रूप में देखा, जो वैष्णव परंपरा के सामाजिक अनुशासन और भक्त-नीति से उत्पन्न होती है। शर्माने यह भी स्पष्ट किया कि सूरदास का 'दास्य' केवल नम्रताका प्रतीक नहीं है, बल्कि यह आत्म-संयम का भी प्रतीक है।
- मिश्रा, एस. के. (2018). भक्ति-साहित्य में दास्य-भाव की परम्परा। वाराणसी: भारती प्रकाशन। मिश्रा का यह ग्रंथ दास्य-भाव के ऐतिहासिक विकास को दर्शाता है, जिसमें संस्कृत, अवधी, ब्रज, औरअसमिया परंपराओं में इस भाव का क्रमिक विकास कैसे हुआ, इसका विवरण है। उन्होंने सूरदास को इस परंपरा की "संवेदनशील लोकप्रिय अभिव्यक्ति" के रूप में प्रस्तुत किया है। सीमा: व्याख्या अधिक ऐतिहासिक है, विश्लेषण कम।
- सिंह,आरएन. (2017). "वैष्णव भक्ति में सेवक-भाव की भूमिका: तुलसी और सूरदास का तुलनात्मक अध्ययन।" भारतीय साहित्य समीक्षा में, सिंह का शोध तुलसीदास और सूरदास दोनों में 'सेवक-भाव' की समानताओं और भिन्नताओं प रकेंद्रित है। वे यह निष्कर्ष निकालते हैं कि तुलसीदास में दास्य-भाव एक विधेय (धार्मिकअनुशासन) के रूप में है, जबकि सूरदास में यह भाव संबंधात्मक (प्रेम-आधारित) हो जाता है
- चौबे, एमएल. (2016). भक्ति आंदोलन की भावनात्मक धारा में दास्य-भाव का स्थान। इलाहाबाद: लोक भारती प्रकाशन। चौबे ने दास्य-भाव को भक्तिआंदोलन की नैतिक नींव के रूप में देखा है। उनके अनुसार, यह भाव मध्यकालीन समाज में विनम्रता, अनुशासन और सामाजिक सेवा का एकसाहित्यिक आदर्श बन गया। सूरदास को इस परंपरा का प्रमुख कवि माना जाता है।

3. शोध-उद्देश्य:

इस शोध का मुख्य उद्देश्य सूरदास के काव्य में दास्य-भाव कीअवधारणा, स्वरूप, और सांस्कृतिक मूल्यांकन का गहराई से अध्ययन करना है। खासकर, यह शोध निम्नलिखित लक्ष्यों प रध्यान केंद्रित करता है—

- सूरदास के काव्य में दास्य-भाव के तात्त्विक और आध्यात्मिक स्वरूप का विश्लेषण करना।
- मध्यकालीन समाज की आस्थाओं के संदर्भ में दास्य-भाव के सामाजिक और धार्मिक निहितार्थों को समझना
- सूर-साहित्य में दास्य-भाव को आधुनिक दृष्टिकोण से पुन र्परिभाषित करना

4. अनुसंधान सामग्री :

प्राथमिकस्रोत : सूरसागर, सूरसारावली, नलदमन, श्रीमद्भागवत महापुराण, और नार दभक्ति सूत्र — ये ग्रंथ सूरदास के दास्य-भाव और भक्ति-दर्शन के मूलआधार हैं।

द्वितीयकस्रोत : विभिन्न आलोचनात्मक ग्रंथ, शोध-पत्र, और आधुनिक विद्वानों के अध्ययन जैसे एस.के. मिश्रा (2018),जी.पी. शर्मा (2019), एवं रूपकथा जर्नल (2021) में प्रकाशित लेख, जो सूर-साहित्य के दास्य-भावका विश्लेषण करते हैं।

5. विश्लेषण

5.1 सूरदास के काव्यमें दास्य-भाव का तात्त्विक और आध्यात्मिक स्वरूप

रदास केकाव्य में दास्य-भाव सिर्फ भक्ति का एक पहलू नहीं है, बल्कि यह जीवन के दर्शन का गहरा सार भी है। उनके लिए ईश्वर और जीव का रिश्ता स्वामीऔर सेवक का है — जहाँ भक्त अपनी पूरी अस्तित्व को ईश्वर को समर्पित कर देता है। यह समर्पण आत्म-त्याग और गहरी निष्ठा का प्रतीक है। सूरदास का मानना है कि भक्तिका सबसे ऊँचा रूप 'सेवा' में छिपा है, औरयह सेवा केवल शारीरिक नहीं, बल्कि आत्मिक समर्पण की एक अवस्था है। उन्होंने कहा है—

"मैं सेवक रघुपति का नाम धरौं,
सदाहि यँहरिप दसेवौं।"
(*सूरसागर*, पद 325)

यहाँ 'सेवक' शब्द आत्म परायणता का प्रतीक है। भक्त अपने अहंकार को छोड़कर ईश्वर की इच्छा में समाहित हो जाता है। सूरदास के अनुसार, यह दास्य केवल बाहरी विनम्रता नहीं, बल्कि आंतरिक आत्म-शुद्धि की एक प्रक्रिया है।

उनके काव्य में दास्य-भाव की यह भावना स्पष्ट रूप से वैष्णव दर्शन के सिद्धांतों से जुड़ी हुई है। जैसे भागवत पुराण में कहा गया है

"साक्षा द्भगवतः सेवायां जीवो दासत्वं उपैति।"
(वल्लभाचार्य. (1996). *श्रीभक्तिसुधा.*)

(अर्थ: ईश्वर की सेवा में ही जीव सच्चा दासत्व प्राप्त करता है।

सूरदास इस दार्शनिक दृष्टिकोण को सरल, लोकभाषार भावपूर्ण शैली में व्यक्त करते हैं —

"प्रभु की आज्ञासिर धरि सेवक,
तनमन धन सब तजिदेई ।"
(*सूरसागर* पद 1023)

यहाँ भक्त का *'सेवकत्व'* पूर्ण समर्पण की स्थिति में है — जिसमें "मैं" (अहं) का लोप होता हैऔर केवल "तुम" (ईश्वर) का अनुभव रह जाता है। यह वही स्थिति है जिसे गीता में निष्काम कर्मयोग के रूप में समझाया गया है। तात्त्विक दृष्टि से यह दास्य-भाव अद्वैत और द्वैत दोनों का संगम है। भक्त स्वयं को ईश्वर से पृथक मानता है (द्वैत) लेकिन उसकी इच्छा में पूरी तरह विलीन होक रअद्वैत की अनुभूति करता है। यह भक्ति और मोक्ष दोनों का मार्ग है। उनके काव्य में दास्य-भाव की यह भावना स्पष्ट रूप से वैष्णव दर्शन के सिद्धांतों से जुड़ी हुई है। जैसे भागवत पुराण में कहा गया है — "साक्षा द्भगवतः सेवायां जीवो दासत्वं उपैति।" (अर्थ: ईश्वर की सेवा में ही जीव सच्चा दासत्व प्राप्त करता है।)

आध्यात्मिक स्तर प रसूरदास का दास्य-भाव आत्मा की सेवा के माध्यम से मुक्ति का प्रतीक है। सूरदास के शब्दों में —

"हरि सेवत सुखु होत अतुल,

यह तनुजन मसुफलत बहोई ।"

(सूरसागर पद 1187)

यह पंक्ति यह स्पष्ट करती है कि दास्य-भाव भक्ति का कर्मयोगी रूप है — जहाँ सेवा, श्रद्धा और समर्पण तीनों मिलकर आत्मिक आनंद का द्वार खोलते हैं।

5.2 दास्य-भाव के सामाजिक और धार्मिक निहितार्थ (मध्यकालीन समाज की आस्थाओं के सन्दर्भ में)

मध्यकालीन भारत सामाजिक असमानता ,जाति-विभाजन और धार्मिक रूढ़ियों से भरा हुआ था। उस समय समाज में ऊँच- नीच, वर्ग-भेदऔर सामंती ढाँचे गहराई से स्थापित हो चुके थे। ऐसे कठिन समय में सूरदास का दास्य-भाव के वल भक्ति का प्रतीक नहीं था, बल्कि यह एक सामाजिक और धार्मिक प्रतिवाद भी था। उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से यह साबित किया कि एक इंसान का असली मूल्य उसकी भक्ति और सेवा-भाव में है, न किउसकी जाति या धन में।

सूरदास का दास्य-भाव वैष्णव दर्शन से प्रेरित है, जिसमें ईश्वर और जीव का संबंध स्वामी और सेवक का होता है। यह रिश्ता आपसी प्रेम, निष्ठा और समर्पण पर आधारित है। सूरदास ने लिखा—

"सबहिहरिसेवक, हरिसबका,

भेद न काहूमाहिं।"

(*सूरसागर*, पद 452)

यह पंक्ति उस युग के धार्मिक और सामाजिक विभेदों पर एक सीधा प्रहार है। सूरदास यहाँ एक ऐसे समाज की कल्पना करते हैं जहाँ सभी मनुष्य ईश्वर के दास हैं, और कोई भी जाति या पद के आधार पर ऊँचा यानीचा नहीं है।इस दृष्टिकोण से, दास्य-भाव समानता का प्रतीक बन जाता है। धार्मिक दृष्टि से, दास्य- भाव ने ईश्वर-भक्ति को आमलोगों के लिए सुलभ बना दिया। भक्ति अब केवल मंदिरों और ब्राह्मणों तक सीमित नहीं रही; साधारण लोग भी अपने जीवन को ईश्वर की सेवा में अर्थपूर्ण बना सकते थे। यह विचार उस समय के भक्ति आंदोलन की क्रांतिकारी धारा से मेल खाता है, जिसने कहा कि "ईश्वर की कृपा जन्म या कर्म से नहीं, बल्कि भक्ति से मिलती है।" सूरदास के शब्दों में—

"जाति-पाँति धन बड़ाई नाहिं,

हरि सेवक तिनहिं जन गनाहिं।"

(सूरसागर. पद 1245)

इस पद के माध्यम से सूरदास ने यह स्पष्ट किया कि भक्ति और सेवा के रास्ते में जातीय भेद भाव का कोई स्थान नहीं है। उन्होंने समाज में भक्ति के लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया को आगे बढ़ाया, जहां हर व्यक्ति को ईश्वर की सेवा का अधिकार है। मध्यकालीन धार्मिक व्यवस्था कर्मकांड और बाह्याचार

पर आधारित थी, लेकिन सूरदास ने इसके विपरीत सेवा और समर्पण को भक्ति का असली सार बताया। उनके लिए सच्ची उपासना पूजा -पाठ में नहीं, बल्कि हृदय की विनम्रता में छिपी हुई है।वे कहते हैं—

"हरि के चरनन कीधूलि लेत,
सेवक जन मनु हरषाय।"
(*सूरसागर*पद 1112)

यहाँ "चरन-धूलि" सिर्फ ईश्वर की सेवा का प्रतीक नहीं है, बल्कि यह आध्यात्मिक विनम्रता और सामाजिक एकता का भी संकेत है। जब भक्त प्रभु की सेवा में अपना जीवन समर्पित करता है, तो वह समाज में सेवा, दया और करुणा के आदर्शों को जीवित रखता है। सूरदास के काव्य में दास्य-भाव का यह रूप वास्तव में आध्यात्मिक समानता और सामाजिक सुधार का एक दार्शनिक सूत्र है। यह व्यक्ति को अहंकार से मुक्त कर मानवता के स्तर पर लाता है। भक्ति यहाँ केवल आत्मिक मुक्ति का रास्ता नहीं है, बल्कि यह नैतिक अनुशासन और सामाजिक समरसता की स्थापना का एक साधन भी है।

इस दृष्टि कोण से, सूरदास का दास्य-भाव मध्यकालीन समाज के लिए एक नैतिक और धार्मिक पुनर्जागरण था। इसने व्यक्ति को आत्म-केन्द्रितता से बाहर निकालकर सेवा, समर्पण और समानता के मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया। भक्ति का यह रूप केवल ईश्वर से नहीं, बल्कि समस्त मानवता से जुड़ने का एक साधन बन गया है।

5.3 सूर-साहित्य में दास्य-भाव को आधुनिक दृष्टि से पुन र्परिभाषित करना — भक्ति में समर्पण बनाम आत्म-स्वातंत्र्य का प्रश्न

सूरदास केकाव्य में दास्य भाव का मुख्य उद्देश्य ईश्वर के प्रति पूरी तरह से समर्पित होना और आत्म निवेदन की गहरी भावना है। भक्त अपने आपको प्रभु का दास मानते हुए, उनकी आज्ञा में अपना जीवन अर्पित करते हैं। लेकिन आज के युग की सोच, जो व्यक्ति की स्वतंत्रता, आत्म-सम्मान और तर्कशीलता परआधारित है, इस भाव को एक नए नजरिए से देखती है। यह सवाल उठता है कि क्या "दास्य" का मतलब आत्म-गुलामी है, या यह अहंकार-त्याग के जरिए आत्म-मुक्ति का रास्ता है? यही बिंदु आज "भक्ति में समर्पण बनाम आत्म-स्वातंत्र्य" के रूप में एक नई परिभाषा का केंद्र बनता है। सूरदास का "दास्य" आत्म-गुलामी नहीं, बल्कि आत्म-स्वातंत्र्य का आध्यात्मिक रूपांतरण है। जब वे कहते हैं—

"सूरदास मन हरिपद राचे,
मोहमि त्यो अभिमान।"
(*सूरसागर*, पद 1128)

यहाँ "दास" होना दमन नहीं है, बल्कि यह एक ऐसी स्थिति है जो अहंकार के नाश से उत्पन्न होती है, जिसमें मनुष्य अपने सीमित अस्तित्व से ऊपर उठकर परमसत्ता के साथ एकत्व प्राप्त करता है। यह समर्पण वास्तव में आत्म-विस्तार की प्रक्रिया है, क्योंकि भक्त अपने छोटे 'मैं' को त्याग कर ब्रह्म के विशाल 'मैं' से जुड़ जाता है।

आधुनिक दृष्टिकोण से दास्य-भाव का पुनर्पाठ

आधुनिक युग में, मनुष्य "स्वतंत्रता" को सर्वोच्च मूल्य मानता है। अस्तित्व वादी विचारक सार्त्र और कैमू के अनुसार, "मनुष्यअपनी नियति का निर्माता है।" इस परिप्रेक्ष्य में, सूरदास का दास्य-भाव, जहाँ व्यक्ति स्वयं को किसी और के अधीन मानता है, पहले तो विरोधाभासी लगता है। लेकिन अगर हम गहराई से देखें, तो सूरदास का यह दास्य बाहरीअधीनता नहीं है, बल्कि यह अहंकार और स्वार्थ की आंतरिक दासता से मुक्ति है। जब मनुष्य ईश्वर के प्रति समर्पित होता है, तो वह संसार के भय, लोभ और अस्थिरता से मुक्त होकर आध्यात्मिक स्वराज्य प्राप्त करता है।

आधुनिक मनोविज्ञान इसे आत्म-संयम और आंतरिक एकाग्रताका प्रतीक मानता है। कार्ल जंग नेकहा है कि "वास्तविक स्वतंत्रता तभी संभव है जब मनुष्य अपने भीतर के 'स्व' के साथ सामंजस्य स्थापित कर ले।" सूरदास के दास्य में यही सामंजस्य झलकता है।

भक्ति में समर्पण बनाम आत्म-स्वातंत्र्य का संतुलन

सूरदास का समर्पण किसी दमनकारी सत्ता के आगे झुकना नहीं है, बल्कि प्रेमपूर्वक आत्म-निवेदन है। उनका कृष्ण "ईश्वर" मात्र नहीं, बल्कि "प्रियतम" हैं — जिनकी सेवा में भक्त अपनी स्वतंत्र इच्छा से आनंद पाता है। सूरदास कहते हैं—

"मैं तो सौंवरिया के रहौंदा सी,
और न चाहौंदे स।"
(सूरसागर पद 1198)

यहाँ "दासी" होना दासता नहीं, बल्कि प्रेम जन्य समर्पण है। आधुनिक दृष्टि से इसेस्वै च्छिक समर्पण कहा जा सकता है — जहाँ आत्म-स्वातंत्र्य खोता नहीं, बल्कि प्रेम में रूपांतरित होकर अधिक गहन होता है।

जब हम दास्य-भाव को आध्यात्मिक मनोविज्ञान के नजरिए से देखते हैं, तो यह 'अहं-शून्यता' की एक प्रक्रिया के रूप में सामने आता है। आज का इंसान बाहरी स्वतंत्रता की खोज में दौड़ता रहताहै, लेकिन अंदर से वह अस्थिर और तनावग्रस्त होता है। सूरदास का दास्य इस विडंबना का एक गहरा उत्तर है — वह यह कहताहै कि असली स्वतंत्रता अहंकार को छोड़नेमें है, क्योंकि जब तक "मैं" बंधन में है, आत्मा को मुक्ति नहीं मिल सकती। यह विचार गीता के कर्मयोग से भी जुड़ता है, जहाँ यह बताया गया है —

त्यक्त्वा कर्म फला सङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभि प्रवृत्तोऽपिनैव किंचित्करोति सः॥
(श्रीमद्भगवद्गीता,अध्याय 4, श्लोक 20)

जो व्यक्ति कर्म के फलों के प्रति आसक्ति को छोड़ देता है, जो हमेशा आत्मा में संतुष्ट रहता है, और किसी बाहरी सहारे (जैसे संसार, व्यक्ति या वस्तु) पर निर्भर नहीं करता — वह कर्म करते हुए भी वास्तव में अकर्म करता है, यानी कर्म बंधन से मुक्त रहता है। यह श्लोक निष्काम कर्मयोग और दास्य-भाव भक्ति का मूलतात्त्विक आधार है। सूरदास के भक्ति-दर्शन में यही सिद्धांत स्पष्ट रूप से दिखाई देता है — भक्त सेवा तो करता है, लेकिन उसका उद्देश्य फल नहीं, केवल प्रभु की प्रसन्नता होती है।

दास्य-भाव का आधुनिक मानवतावादी अर्थ

आधुनिक मानवतावादी सोच के अनुसार, सूरदास का दास्य-भाव हमें "सेवकता" और "विनम्रता" का एक जीवन-दर्शन प्रदान करता है। आज के समाज में, जहाँ अहं, उपभोग और प्रतिस्पर्धा का बोलबाला है, सूरदास का यह भाव मानवता केलिए एक नैतिक अनुशासन की तरह है। सेवा, समर्पण और करुणा — ये तीनों गुण दास्य-भाव के मूल तत्व हैं, जो आज भी हमारे सामाजिक जीवन में प्रासंगिक बने हुए हैं।इस दृष्टि से दास्य-भाव को "आधुनिक नैतिक मूल्य" के रूप में पुन र्परिभाषित किया जा सकताहै — जहाँ ईश्वर की सेवा के स्थान पर *मानवता की सेवा* सर्वोच्च साधना बन जाती है।महात्मा गांधी ने भी यही दृष्टिकोण अपनाया था जब उन्होंने कहा —

"ईश्वर की सेवा का सर्वोत्तम मार्ग मानव की सेवा है।"

(गांधी, एम. के. (2009). *सत्य औरअहिंसा: गांधी के विचार औरभा षण*)

यह कथन सूरदास के दास्य-दर्शन का एक नया रूप है, जहाँ भक्त का समर्पण अब "स्वामी-कृष्ण" से बढ़कर "समाज और मानवता" की ओर मुड़ता है। अगर हम सूरदास के दास्य-भाव को आधुनिक नजरिए से देखें, तो यह न तो गुलामी का प्रतीक है और न ही आत्म-निषेध का। यह आत्म-संयम, प्रेम से भरा समर्पण और अहंकार से मुक्ति का भाव है — जो व्यक्ति को बाहरी सत्ता से नहीं, बल्कि अपने भीतर की बंधनों से आज़ाद करता है।

इस तरह, सूरदास का दास्य-भाव भक्ति और स्वतंत्रता के बीच विरोध नहीं, बल्कि एक-दूसरे का समर्थन है। आज के युग में, जहाँ लोग स्वतंत्रता की खोज में अकेलेपन का सामना कर रहे हैं, वहाँ सूरदास का यह संदेश बेहद प्रासंगिक है — सच्ची स्वतंत्रता सेवा और समर्पण में है, क्योंकि जब इंसान अपने स्वार्थ से ऊपर उठकर प्रेमपूर्वक किसी उच्चतर आदर्श के प्रति समर्पित होता है, तभी वह सच में स्वतंत्र बनता है।

6. निष्कर्ष:

सूरदास के काव्य में दास्य-भाव सिर्फ भक्ति का एक पहलू नहीं है, बल्कि यह आध्यात्मिक, सामाजिक और नैतिक दृष्टि से एक गहरा अनुभव है। यह भाव भक्त और ईश्वर के बीच स्वामी-सेवक के रिश्ते का प्रतीक है, जिसमें अहंकार का त्याग, आत्म-समर्पण और प्रेमपूर्वक सेवा शामिल है। सूरदास ने इसे मध्यकालीन समाज में सामाजिक समानता और धार्मिक सहानुभूति का एक माध्यम भी बनाया, जहाँ जाति, वर्ग या धन का कोई महत्व नहीं रह गया। अगर हम इसे आधुनिक दृष्टि से देखें, तो दास्य-भाव केवल आत्म-गुलामी नहीं है, बल्कि यह आत्मिक स्वतंत्रता का एक नयास्प है। यह प्रेम और समर्पण के जरिए व्यक्ति को अपने स्वार्थ और अहंकार से मुक्त करता है। सूरदास का यह संदेश आज भी उतना ही प्रासंगिक है — यह व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में नैतिक अनुशासन, करुणा, सेवा और मानवता के मूल्यों को स्थापित करने का एक साधन है।

इस तरह, सूर-साहित्य में दास्य-भाव न केवल भक्ति-साहित्य का एक महत्वपूर्ण सिद्धांतहै, बल्कि यह एक सामाजिक, दार्शनिक और आध्यात्मिक मार्ग दर्शक भी बनता है, जो भक्त को आत्म-शुद्धि, मानवता की सेवा और सच्चीस्व तंत्रता की ओर अग्रसर करता है।

संदर्भसूची:

1. सूरदास. (2010). *सूरसागर.* गोरखपुर: गीता प्रेस, ,पृ. 275-310।
2. वल्लभाचार्य. (1996). *श्री भक्ति सुधा.* वाराणसी: चौखम्बा विद्या भवन।

3. व्यास. (2018). *श्रीमद्भगव द्गीता* ,गोरखपुर: गीता प्रेस।
4. गांधी, एम. के. (2009). *सत्य और अहिंसा: गांधी के विचार और भाषण* (पृ. 78). अहमदाबाद: गांधी स्मृति और दर्शननिधि।
5. बरुआ, अंकुर. (2020*). "दास्य-भाव की युद्धात्मक काव्य-संरचना: देवता और भक्त के बीच उद्धार-संघर्ष",* जर्नल ऑफ धर्मा स्टडीज़ https://doi.org/10.1007/s42240-019-00062-x
6. स्वामी, डॉ. अदिति और धारीवाल, डॉ. मंजू (2021). जयदेव और दादू केभक्ति-काव्य के माध्यम से संस्कृत एवं भक्ति-साहित्य की बदलतीप्र वृत्तियाँ। रूपकथाजर्नल ऑन इंटरडिसिप्लिनरी स्टडीज़ इन ह्यूमैनिटीज़, 13(4), 1-12.
7. मीना, तुलसी राम. (2025). सूर-काव्यमें लोक-जीवन के विविध आयाम। रिसर्च हब इंटरनेशनल मल्टिडिसिप्लिनरी रिसर्च जर्नल, 12(1), 71-77.
8. ठाकुर, भक्ति विनोद. (1899/अनुवादित). कृष्ण-दास्य: कृष्ण के प्रति सेवकत्व का भाव। सज्जनतोषणी, खंड 11, अंक 6. प्राप्त:
9. *शंकरदेव-परम्परा में दास्य-भाव के मूलतत्त्व* ।(अज्ञाततिथि). प्राप्त: https://www.atributetosankaradeva.org/dasya_bhava.htm
10. *सूरदास की काव्य गत विशेषताएँ*। (2021). हिंदी- कुंज. प्राप्त: https://www.hindikunj.com/2021/07/surdas-ki-kavyagat-visheshta.html
11. मिश्रा, एस. के. (2018). *भक्ति-साहित्य में दास्य-भाव की परम्परा*। वाराणसी: भारती प्रकाशन।
12. शर्मा, जी. पी. (2019). *सूरदास और दास्य-भाव की सांस्कृति कव्याख्या*। *हिंदी अध्ययन पत्रिका*, 45(2), 112-128.
13. सिंह, आर. एन. (2017) *वैष्णव भक्ति में सेवक-भाव की भूमिका: तुलसी और सूरदास का तुलनात्मक अध्ययन*। *भारतीय साहित्य समीक्षा*, 10(3), 85-98.
14. चौबे, एम. एल. (2016) *भक्ति आंदोलन की भावनात्मक धारा में दास्य-भाव का स्थान*। इलाहाबाद: लोक भारती प्रकाशन।